|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

1/2 (श्लोक 1-6), शनिवार, 17 अगस्त 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/nqfw-_c44rs

लक्षण ही है भक्त की सही पहचान

पारम्परिक गीत शृङ्खला, सङ्कीर्तन, हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन, भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना एवम् श्रीगुरु चरणों में वन्दन के पश्चात् पन्द्रहवें अध्याय के पूर्वार्द्ध सत्र का विवेचन प्रारम्भ हुआ।

अत्यन्त आनन्द का विषय है कि अपने जीवन की सफलता हेतु, इस मनुष्य जीवन को सार्थक करने के लिए, अपने जीवन के परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, अपने जीवन को इस लोक और परलोक में विजयी बनाने के लिए और हर प्रकार से मानव जीवन के उत्थान के लिए हम लोग श्रीमद्भगवद्गीता के पठन में, उसका उच्चारण सीखने में, चिन्तन-मनन-अध्ययन करने में लग गए हैं। उसको समझने में और अपने जीवन में लाने में प्रयासरत हो गए हैं। पता नहीं हमारे पूर्व जन्म के कोई ऐसे सुकृत हैं अथवा इस जन्म के सुकृत हैं या हमारे पूर्वजों के पुण्य फलित हुए हैं या फिर इसी जन्म में किसी महान सन्त की दृष्टि हम पर पड़ गई है और हमारा भाग्योदय हो गया। हम इस कार्य के लिए चुने गए हैं और श्रीमद्भगवद्गीता का सान्निध्य हमें प्राप्त हो गया।

सदैव हमारे मन में यह दृढ़ भावना होनी चाहिए कि हमने श्रीमद्भगवद्गीता को नहीं चुना अपितु हमें चुना गया है। श्रीभगवान् की अतिशय कृपा के फलस्वरूप ही श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ा और समझा जा सकता है। उनकी कृपा से वञ्चित रह कर कोई भी श्रीमद्भगवद्गीता को देख अथवा सुन भी नहीं सकता। इसका प्रमाण यह है कि स्वयं श्रीभगवान् ने अट्ठारहवें अध्याय में कहा -

मामेवैष्यत्यसंशयः।

जिसका अर्थ है जो श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ता है, मुझे प्राप्त करता है।
अब, विचार योग्य विषय यह है कि ईश्वर को पाना इतना सुलभ कैसे हो सकता है? यह लाभ तो अतिविशिष्टता से ही सुगम हो सकता है।

एक बार ऋषिकेश में परमश्रद्धेय, ब्रह्मलीन स्वामी रामसुख दास जी का प्रवचन चल रहा था। प्रातः और सायंकाल प्रवचन होता। एक सत्र में स्वामीजी ने घोषणा कर दी कि जितने भी भक्त गण एकत्रित हैं, सबकी भगवद्प्राप्ति, अर्थात मोक्ष प्राप्ति सुनिश्चित है। एक सौ तीन वर्षीय भगवद्प्राप्त सिद्धपुरुष जिनको भारत के सभी ऋषि मुनि दण्डवत प्रणाम करते हैं, उनके श्रीमुख से इतने पावन वचन सुन हजारों की सङ्ख्या में एकत्र भक्तगण उत्साहित हो उठे, इस विचार से कि स्वामीजी ने उन सबका उद्धार कर दिया, पर यह कहकर स्वामीजी कुछ क्षण के लिए मौन हो गए और फिर बोले कि गीता पठन से भगवद्प्राप्ति तो

सुनिश्चित है पर कब प्राप्त होगी? वह प्रत्येक जन की गति और लगन पर निर्भर है। गति और लगन में दृढ़ता ले आयें तो इसी जीवन में, अन्यथा अनेकों जन्म भी लग सकते हैं। स्वामीजी ने आश्वस्त किया कि आप सब ने सही मार्ग चुन लिया है गन्तव्य तक पहुँचने का। मानों मुम्बई से दिल्ली जाने के लिए महामार्ग सही चुन लिया तो दिल्ली तो पहुँच ही जायेंगे, यह तो तय ही है, पर कब पहुँचूँगा यह भिन्न विषयों पर निर्भर है - गति, साधन, वैकल्पिक मार्ग का चयन इत्यादि। यदि हम इस मार्ग पर बिना विचलित हुए तीव्रता से बढ़ते जाएँ तो परमधाम की प्राप्ति सुनिश्चित है।

श्रीमद्भगवद्गीता केवल सात सौ श्लोकों का सबसे छोटा ग्रन्थ है। गीताप्रेस ने तो इसे एक माचिस के आकार में छाप दिया और यहाँ तक कि एक पृष्ठ मे भी छाप दिया। इतनी लघु होने पर भी इतनी सशक्त पुस्तक है कि पिछले तिरपन सौ वर्षों में केवल भारत में ही नहीं अपितु विदेशी दार्शनिकों ने भी गीताजी की महत्ता को स्वीकार किया है। गीता प्रेस के संस्थापक परमश्रद्धेय सेठ जयदयाल गोयन्दका जी ने श्रीमद्भगवद्गीता की प्रस्तावना लिखी जो अपने आप में ही महान कार्य है, क्योंकि उन्होंने सब शास्त्रों का सार हिन्दी भाषा में अनुवादित कर हिन्दू समाज पर बड़ा उपकार किया। उनके अद्वितीय प्रयास से ही श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण जैसे हमारे धार्मिक ग्रन्थ सबको सुलभता से प्राप्त हुए, अन्यथा उनकी एक-एक लिपि किसी सङ्ग्रहालय में ही पड़ी मिलती। श्रीमद्भगवद्गीता की प्रस्तावना में सेठ जी ने लिखा कि सभी ग्रन्थों को पढ़कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्रीमद्भगवद्गीता के समान कल्याणकारी ग्रन्थ दूसरा कोई नहीं।

सभी वेदों का सार उपनिषद हैं और सब उपनिषद का सार भगवद्गीता है। श्रीभगवान् ने सभी उपनिषदों को दुह कर गीता का उपदेश दिया।

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपाल नन्दनः |

इसलिए हमारी आचार्य परम्परा में श्री रामानुजाचार्य जी ने लिखा -

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

एक श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ ली तो अन्य कोई भी शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं। अन्य सभी ग्रन्थ विषय-विशेष हैं - एक ही मार्ग का दर्शन कराते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता एकमात्र ग्रन्थ है जो इस लोक और परलोक दोनों में हित का मार्ग प्रशस्त करती है। इसे पढ़ मनुष्य इस जीवन में हर क्षेत्र में प्रगति कर सकता है और परम लोक के द्वार भी खोल देता है।

यह ग्रन्थ किसी मार्ग का आग्रही नहीं है। श्रीभगवान् ने कहीं भी किसी कार्य को करने की बाध्यता नहीं सुझाई। उन्होंने केवल लक्षणों पर ध्यान केन्द्रित किया है। किसी भी कर्म को करने से उसके प्रभाव के प्रति सम्वेदनशील रहने की सीख दी है। अध्याय बारह में श्रीभगवान् ने भक्त के उन्तालीस लक्षण बताये, पर कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं कि जो तिलक लगाये, अथवा चोटी रखे या ताली बजा बजा कर कीर्तन करे वही श्रीभगवान् का सच्चा भक्त है। श्रीभगवान् को ऐसे धार्मिक चिह्नों से कुछ लगाव नहीं। वे तो बारहवें अध्याय के श्लोक तेरह से श्लोक उन्नीस तक भक्त के लक्षण विस्तृत रूप से समझाते हैं -

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र: करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकार: समदुःखसुख: क्षमी || 12.13

श्रीभगवान् ने कहीं पर भी किसी प्रकार की पूजा विधि या जप, तप, उपवास के नियम से बाध्य नहीं किया, केवल इस पर आग्रह किया कि इन सब कर्मों को करने का हम पर क्या प्रभाव है। हमारे व्यवहार में क्या परिवर्तन हुआ, हमारे स्वभाव में कितना परिवर्तन या हमारी सात्त्विकता कितनी बढ़ गयी इस पर एक निपुण चिकित्सक की भाँति विशेष आग्रह किया।

जिस प्रकार चिकित्सक रोगी की जाँच करते हुए केवल मूल तथ्यों की पहचान करता है न कि रोगी की लम्बी-लम्बी कहानियों पर ध्यान देता है। वह रोगी के केवल लक्षण समझना चाहता है। इसी प्रकार श्रीभगवान् भी केवल लक्षण समझना चाहते हैं। सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता केवल परिणामों को प्रधान मानती है।

दूसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण समझाए, तेरहवें अध्याय में ज्ञानी के लक्षण, चौदहवें अध्याय में गुणातीत के लक्षण, सोलहवें अध्याय में दैवीय गुणों के लक्षण।

सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान् ने स्पष्ट किया कि किसी भी मार्ग पर चलते हुए उसका अगर सही प्रभाव प्राप्त हो रहा है तो वही सफलता का प्रमाण है, अन्यथा नहीं। कई घण्टे पूजा करने के पश्चात् यदि कोई असत्य वचन कहे, दूसरों को ठगे, दूसरों से ईर्ष्या करे, षड़यन्त्र रचे, तो यह तो भक्त के लक्षण नहीं हैं।

कई साधकों के मन में कई बार यह सवाल उठता है कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को ही श्रीमद्भगवद्गीता क्यों सुनाई, धर्मराज तो युधिष्ठिर थे। इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भगवद्गीता में ही मिलता है।

श्रीभगवान् ने अर्जुन को कई नामों से सम्बोधित किया, पार्थ कहकर नौ बार पुकारा और वे अर्जुन के दो अतिविशिष्ट गुणों के प्रशंसक थे।

प्रथम**, अनघ** - जिसने पाप नहीं किया। पूज्य स्वामीजी महाराज कहते हैं, पूरी महाभारत में अर्जुन ने कोई अनुचित कथन नहीं कहा, न ही कोई अनुचित कर्म किया। महाभारत के सभी पात्रों ने मर्यादा का पालन तो किया पर युधिष्ठिर को खरी खोटी भी सुनाई। अर्जुन ने उन्हें ज्येष्ठ भ्राता का सम्मान देते हुए एक बार भी अपना मत नहीं रखा। महाभारत का स्वाध्याय करने पर कई गुण जन अर्जुन के चरित्र से बहुत प्रभावित होते हैं।

अर्जुन सब भाइयों में सबसे अधिक पराक्रमी थे। राजसूय यज्ञ के लिए धन राशि एकत्रित करने के लिए चार पाण्डव चार दिशाओं में गए, अर्जुन अपने तीनों भाइयों की जमा धन राशि की तुलना में सबसे अधिक धन एकत्र कर लाए थे, अतः उन्हें धनञ्जय कहा जाता है।

अपने पराक्रम से उन्होंने भगवान् महादेव को भी अत्यन्त प्रसन्न किया था। मल्लिकार्जुन गिरि पर दस दिन तक महादेव और अर्जुन में मल्ल युद्ध चला। महादेव को तो कोई पराजित नहीं कर सकता पर अर्जुन अपने बल से पराजित भी नहीं हुए। हैदराबाद के निकट यह स्थान एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है।

विराट नगर के युद्ध में अर्जुन ने अकेले ही पूरी कौरव सेना को परास्त किया था। राजकुमार उत्तम को सारथी बना बृहन्नला का रूप धारण कर कौरवों पर विजय प्राप्त की। इतने बलिष्ट होने पर भी उन्होंने कभी उसका दम्भ नहीं किया।

उनकी दूसरी विशिष्टता थी कि वे किसी की निन्दा नहीं करते थे, इसलिए श्रीभगवान् ने उन्हें **अनुसूय** बुलाया। श्रीभगवान् ने अर्जुन को इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता सुनाई क्योंकि वे उसके सुपात्र हैं।

महाहभारत में अभिमन्यु का नृशंस वध हुआ। सात कौरवों ने उस बालक को घेरकर पीछे से वार किया। शाम को जब अर्जुन को यह दुःखद समाचार प्राप्त हुआ तो उन्होंने घोर प्रतिज्ञा कर ली कि सुबह जयद्रथ का वध करूँगा, वर्ना स्वयं अग्निशैया में दहन हो जाऊँगा। ऐसी घोर प्रतिज्ञा के उपरान्त वे शयन कक्ष में जाकर लेट गए पर भगवान् श्रीकृष्ण को अर्जुन की यह प्रतिज्ञा चिन्तित कर रही थी। वे अर्जुन के कक्ष में मध्यरात्रि में आये और अर्जुन को निश्चिन्त सोते हुए देखकर बोले, "हे पार्थ, तुम इतने निश्चिन्त कैसे हो? तुम्हारी प्रतिज्ञा मुझे व्याकुल कर रही है।" यह सुन अर्जुन मुस्कुरा कर बोले, "हे मधुसूदन, जिसकी चिन्ता आप करते हो, उसे किस बात की चिन्ता। मुझे विश्वास है कि आप मेरी प्रतिज्ञा को सफल करवा देंगे, अतः मैं निश्चिन्त हो सो रहा हूँ।"

महाभारत के युद्ध के आरम्भ से पहले भी जब दुर्योधन और अर्जुन श्रीभगवान् से भेंट करते हैं तो अर्जुन केवल निहत्थे भगवान् श्रीकृष्ण का चयन करते हैं और कहते हैं, "हे केशव, जब आप मेरे साथ हैं तो मैं तीनों लोकों में देव-दानवों को भी पराजित कर सकता हूँ।" दुर्योधन श्रीभगवान् की एक अक्षौहणी नारायणी सेना को पाकर अति प्रसन्न हो जाता है। निहत्थे कृष्ण को अर्जुन ने चुना, यह उनकी प्रेम भक्ति का प्रमाण है।

श्रीभगवान् ने चौथे अध्याय में कहा भी है -

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥४.३ ॥

हे अर्जुन, तुम मेरे भक्त भी हो और सखा भी हो। भक्त भगवान से प्रेम करे यह तो सामान्य विषय है, पर श्रीभगवान् का अर्जुन के प्रति प्रेम अतिविशिष्ट है।

खाण्डव वन के युद्ध में भगवान् इन्द्र और अग्नि देवता अर्जुन को दिव्य रथ और गाण्डीव भेंट करते हैं और वे श्रीभगवान् से सङ्कोच कर पूछते हैं कि आप तो परब्रह्म परमेश्वर हैं, हम आपको क्या भेंट कर सकते हैं? पर चूँकि नियम से बँधे हैं, तो आप अपनी इच्छा बताएँ तब श्रीभगवान् ने अत्यन्त विनम्र होकर अग्नि देव को प्रसन्न करते हुए उनसे एक अद्‌भुत वर माङ्गा, कि उनकी और अर्जुन की प्रीति सदैव अखण्ड रहे।

यह तो एक अनूठा उदाहरण है, जिसमें श्रीभगवान् भक्त की प्रीति की माँग करते हैं, इस उदाहरण से ही अर्जुन की विशेषता का प्रमाण मिलता है।

इसी प्रकार यह सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता श्रीभगवान् ने अर्जुन को नहीं सुनाई, अर्जुन तो उनके एक इशारे से सब समझ जाते क्योंकि वे तो सभी दैवीय गुणों से परिपूर्ण थे। श्रीभगवान् ने अर्जुन को निमित्त बना, यह हम जैसे जनसाधारण के उद्धार के लिए सुनायी है।

15.1

श्रीभगवानुवाच
ऊर्ध्वमूलमधः(श्) शाखम्, अश्वत्थं(म्) प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं(वँ) वेद स वेदवित्॥15.1॥

श्रीभगवान् बोले – ऊपर की ओर मूल वाले (तथा) नीचे की ओर शाखा वाले (जिस) संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को (प्रवाह रूप से) अव्यय कहते हैं (और) वेद जिसके पत्ते हैं, उस संसार-वृक्ष को जो जानता है, वह सम्पूर्ण वेदों को जानने वाला है।

विवेचन: श्रीमद्भगवद्गीता में बारहवाँ और पन्द्रहवाँ अध्याय सबसे छोटे हैं। बारहवें अध्याय में अनुष्टुप छन्द के बीस श्लोक हैं। पन्द्रहवें अध्याय में भी बीस ही श्लोक हैं, परन्तु कुछ श्लोक त्रिष्टुप छन्द के हैं।

त्रिष्टुप छन्द और अनुष्टुप छन्द क्या हैं?

अनुष्टुप छन्द आठ-आठ मात्राओं के चार चरण, ऐसे बत्तीस अक्षरों के चार चरण को अनुष्टुप छन्द कहा गया है। त्रिष्टुप छन्द के भी चार चरण हैं। तेरह मात्राओं का एक छन्द। ऐसे बावन मात्राओं के चार चरण, चार पङ्क्तियों में छपे होते हैं। यह अध्याय बहुत छोटा है, परन्तु उतना ही प्रभावशाली है। श्रीभगवान् ने इसको शास्त्र की उपमा दी है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।

महापुरुषों ने इसलिए ऐसी परम्परा बना दी कि माङ्गलिक अवसर हो या शोक का अवसर, भोजन ग्रहण के आरम्भ में या यात्रा के आरम्भ में, इस अध्याय को पढ़ लेना ही पर्याप्त है। इस अध्याय का महात्म्य इसलिए अधिक है क्योंकि इसमें श्रीभगवान् ने अपने गोपनीय, पुरुषोत्तम स्वरुप का स्वयं वर्णन किया है अतः इसे **पुरुषोत्तमयोग** कहा गया।

एक रूपक से श्रीभगवान् इस अध्याय का आरम्भ करते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उपमा एक उल्टे पीपल के वृक्ष से कर रहे हैं। हम अगर श्रीमद्भगवद्गीता को स्वयं पढ़ने बैठे तो इसको समझ नहीं सकते, इसको समझने के लिए एक गुणी विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ती है।

श्रीभगवान् इस वृक्ष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि, ऐसा पेड़ जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं एवं शाखाएँ नीचे की ओर। इसमें ऊपर का अर्थ केवल दिशात्मक नहीं समझना, इसका सन्दर्भ उच्चता से है। जैसे मान लीजिये कि कोई विद्यार्थी दूसरी कक्षा को पास करके तीसरी कक्षा में गया तो हम कहेंगे कि वह ऊपर चला गया। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उसकी कक्षा अब ऊँचे तल पर होगी। हो सकता है तीसरी कक्षा सबसे निचली मञ्जिल पर लगती हो और दूसरी कक्षा उसके ऊपर। इसमें ऊपर का अर्थ ऊपर न मान कर उच्च अवस्था माना जाएगा।

यह जो वृक्ष है, इसकी शाखाएँ नीचे की ओर हैं एवं जड़ें ऊपर की ओर हैं, केवल कल्पना ही है, हमने यथार्थ में तो नहीं देखा। इस उदाहरण के स्पष्टीकरण में यदि मानव शरीर की रचना को समझें तो यह तथ्य समझ में आता है। यदि मनुष्य के हाथ-पैरों में कुछ हो जाए तो वह जीवित रह सकता है, किन्तु सिर को अलग कर दिया जाए तो वह जीवित नहीं रह सकता। यदि हम पेड़ की पत्तियों को, टहनियों को काट देंगे तो पेड़ फिर से पूरा हो सकता है किन्तु यदि मूल को हानि पहुँचा दी जाए तो वह पेड़ नष्ट हो जाता है, अर्थात मनुष्य शरीर का मूल उसका शीर्ष है जो ऊपरी दिशा में है, उसको आघात पहुँचने पर मृत्यु निश्चित है।

श्रीभगवान् ने संसार वृक्ष को **अश्वत्थ** कहा। अश्वत्थ में अ+श्व का अर्थ है जो कल तक न रहे। जो हर क्षण बदल रहा है। वेदान्त में संसार की परिभाषा है-

"संसृति इति संसार"

संसार प्रतिक्षण बदलता रहता है। एक पल पहले संसार जैसा था, वैसा अब नहीं है।

इसकी उपमा श्रीभगवान् ने पीपल के पेड़ से की है क्योंकि पीपल का पत्ता सदैव चलायमान रहता है, अगर हवा न भी हो तो भी पीपल के पत्ते में हलचल रहती है।

श्रीभगवान् ने संसार को **अव्यय** कहा, जो कभी नष्ट नहीं होता। यह न कभी शुरू हुआ है और न ही कभी समाप्त होगा। यह सनातन है। नित्य रहने वाला है।

जैसे कोई हमसे कहे कि एक कागज़ को नष्ट करके दिखाओ जिसके लिए दस लाख रुपये का पुरस्कार मिलेगा, परन्तु हम कागज़ को नष्ट नहीं कर पाएँगे। कागज को यदि फाड़ कर फेंके तो यह कतरन बन जायेगा पर नष्ट नहीं होगा। यदि कोई कहे कि हम इसे पानी में भिगो देते हैं, कुछ समय में नष्ट हो जायेगा पर वह कागज़ पानी में लुगदी बन जाएगा या जलाने पर कॉर्बन में बदल जायेगा, पर फिर भी वह नष्ट नहीं होता, बल्कि वह विभिन्न रूपों में परिवर्तित हो जाता है। वैसे ही पूरा ब्रह्माण्ड अव्ययी है, नष्ट नहीं होता, केवल इसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। पृथ्वी पर जनसङ्ख्या बढ़ने या घटने से पृथ्वी का वजन बढ़ता या घटता नहीं है। अतः संसार परिवर्तनशील है पर अव्यय है।

छन्दांसि यस्य पर्णानि - ज्ञान इसके पत्ते हैं। जिस प्रकार पीपल के वृक्ष पर असङ्ख्य, अनन्त पत्ते हैं, उसी प्रकार ज्ञान भी अनन्त है।

यस्तंव वेद स वेदवित्त - जो इसको जान लेता है वह ज्ञानी कहलाता है।श्रीमद्भगवद्गीता को जानने का स्तर सर्व प्राणियों में भिन्न हो सकता है। किसी ने केवल श्रीमद्भगवद्गीता को चलिचत्र में न्यायालय में प्रयोग की जाने वाली पुस्तक के रूप में समझा जिस पर अपराधी शपथ लेते हैं। किसी अन्य ने कहा कि मैं तो लर्नगीता का शिष्य हूँ, मैं श्रीमद्भगवद्गीता के बारे में पर्याप्त ज्ञान रखता हूँ - अट्ठारह अध्याय, सात सौ श्लोक और श्रीभगवान् और अर्जुन का संवाद, पर उस जन को शायद कोई श्लोक कण्ठस्थ न हो। किसी अन्य को कुछ श्लोक भी ज्ञात हैं, पर अर्थ से अनभिज्ञ है। फिर कोई ऐसा भी होगा जो उसके अर्थ को भी जानता है और ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जैसे परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, जो श्रीमद्भगवद्गीता को केवल जानते, सुनते नहीं, उसको जीते हैं। उनके दृष्टिकोण में श्रीमद्भगवद्गीता का भाव झलकता है, अतः सभी का जानने का स्तर अलग-अलग हो सकता है और उसका नियत परिणाम भी। यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि हम किस स्तर की जानकारी रखते हैं।

इसी सन्दर्भ में एक और रोचक प्रसङ्ग है। बीस-पच्चीस वर्ष पहले, पूज्य स्वामी जी महाराज चेन्नई गए। वहाँ एक पाँच वर्ष के

बालक को अँग्रेजी का पेपर पढ़ता देख, स्वामीजी को आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी। उन्होंने बालक से पूछा, "क्या तुम्हें अँग्रेजी पढ़नी आती है?" उसने कहा, "हाँ"। स्वामी जी ने फिर पूछा "क्या तुम पेपर पढ़ लेते हो?" उसने कहा, "जीहाँ"। स्वामी जी ने उससे पढ़ कर बताने के लिए कहा तो उस बच्चे ने बोला, "टी एच इ टी आई एम इ इस ओ एफ आई एन डी आई ए (The Times of India), बच्चे को शब्द बनाने नहीं आते थे, बच्चे को केवल शब्दावली आती थी। वह उस पेपर में केवल अक्षर पढ़ रहा था अतः वह बच्चा स्वयं की दृष्टि में ज्ञानी है, किन्तु वह स्वामी जी की दृष्टि में पूर्ण रूप से ज्ञानी नहीं है। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता को जानने का स्तर सभी का अलग है।

15.2

अधश्चोर्ध्वं(म्) प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।2।।

उस संसार वृक्ष की गुणों (सत्त्व, रज और तम) के द्वारा बढ़ी हुई (तथा) विषय रूप कोंपलों वाली शाखाएँ नीचे, (मध्य में) और ऊपर (सब जगह) फैली हुई हैं। मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बाँधने वाले मूल (भी) नीचे और (ऊपर) (सभी लोकों में) व्याप्त हो रहे हैं।

विवेचन:

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! इस अश्वत्थ वृक्ष के ऊर्ध्व मूल अर्थात मूल में मैं हूँ। अब उसको कोई ईश्वर माने, साकार माने, निराकार माने, ब्रह्म माने, अपना इष्ट माने, परब्रह्म परमात्मा माने या और कुछ। ब्रह्मा जी इस वृक्ष का मुख्य तना हैं। ब्रह्मा जी द्वारा तीन गुणों का निर्माण किया गया - सत्त्व, रज और तम। इस वृक्ष का विस्तार तीन गुणों - सत्त्व, रज और तम से हुआ है। समस्त संसार की रचना इन तीन गुणों से ही हुई है।

इन गुणों के मिश्रण से तीन मुख्य योनियाँ हैं- देव, मनुष्य और तिर्यक। जो ऊपर की ओर जा रही हैं, वे देव योनि हैं, जो बीच में है, मनुष्य योनि है और जो नीचे की ओर शाखाएँ जा रही हैं, वे तिर्यक योनि हैं, जैसे पशु, कीट, नर्क, पाताल आदि की योनियाँ।

इस ब्रह्माण्ड में चौदह लोक बताए गए हैं।

1. सत्यलोक
2. तपलोक
3. जललोक
4. महद्लोक
5. स्वर्गलोक
6. भुवलोक
7. मनुष्यलोक
8. अतललोक
9. पाताललोक
10. वितललोक
11. सुतललोक
12. तलातललोक
13. महातललोक
14. रसातललोक

इन चौदह लोकों में मनुष्य लोक सातवें स्थान पर है। मनुष्य लोक से ऊपर के छह लोक देवलोक हैं। जो ऊपर के लोक हैं वे देव योनियाँ हैं, नीचे के लोक तिर्यक योनियाँ हैं।

छन्द इसके पत्ते हैं, अहंता, ममता और वासना इसकी जड़ें हैं, जो नीचे, ऊपर सब लोकों में विचरती हैं और सबको कर्मों में बाँधती हैं। मैं और मेरा के जाल में उलझकर, अहंता और ममता के कारण हम कर्म के बन्धन में फँसते हैं। विदेश के युद्ध में किसी की मृत्यु हो जाये तो वह हमें इतना प्रभावित नहीं करती जितना निकट सम्बन्धी की मृत्यु, क्योंकि जहाँ पर मैं और मेरा के बन्धन से हम जुड़ गए, वहाँ कर्म के बन्धन से जकड़ गए, मरने वाले तो दोनों मनुष्य ही थे। इच्छाओं में जकड़ जाना वासना है।

इन तीन गुणों से पञ्च महाभूत का निर्माण हुआ और पञ्च महाभूत से पञ्च तल मात्राओं का निर्माण हुआ - शब्द, रस, रूप, स्पर्श और गन्ध।

15.3

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं(म्) सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।3।।

इस संसार वृक्ष का (जैसा) रूप (देखने में आता है), वैसा यहाँ (विचार करने पर) मिलता नहीं; (क्योंकि इसका) न तो आदि है, न अन्त है और न स्थिति ही है। इसलिये इस दृढ़ मूलों वाले संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को दृढ़ असङ्गता रूप शस्त्र के द्वारा काटकर –

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! यह संसार रूपी वृक्ष जैसे मैंने बताया वैसा है नहीं। मैंने तुम्हें केवल एक उदाहरण मात्र दिया है। इस वृक्ष के तो तुम आदि और अन्तिम छोर दोनों देख सकते हो पर मेरे ब्रह्माण्ड का न कोई आदि है और न कोई अन्त है। वह अनन्त सृष्टि है। इस वृक्ष का एक आकार तो दिख रहा है पर मेरा जो ब्रह्माण्ड है - **न सम्प्रतिष्ठा** - टिकता ही नहीं। यह निरन्तर रूप बदलता रहता है।

इस पेड़ की जड़ें - अहंता, ममता और वासना की जकड़ से छूटने के लिए असङ्ग के शस्त्र का उपयोग करना पड़ता है।

चौदह लोकों का ज्ञान हमें मिला, अनेक योनियाँ - थलचर, नभचर, जलचर, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इत्यादि को समझा, पञ्चमहाभूतों से बने मनुष्य शरीर को समझा। देव शरीर केवल प्रकाश स्वरूप होता है, भूत-प्रेत इत्यादि केवल वायु से निर्मित हैं। दो, चार, आठ या उससे भी अधिक पैर वाले कीट होते हैं। फिर वनस्पति है, जीवाणु इत्यादि चौरासी लाख योनियाँ हैं, जो

सत्त्व, रज और तमोगुण से निर्मित हैं।

अपने कर्म के अनुसार मनुष्य को योनि प्राप्त होती है और यह चक्र करोड़ों वर्षों से चला आ रहा है।

आदि शङ्कराचार्य भगवान कहते हैं कि मनुष्य का - **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।** अर्थात बार-बार जन्म लेना, बार-बार मरना और बार-बार माँ के गर्भ में कष्ट सहना यही खेल चला आ रहा है। चौरासी लाख योनियों में ही मनुष्य भटकता फिर रहा है। अच्छे कर्म किये तो देव योनि, ठीक-ठाक कर्म मिए तो मनुष्य योनि और अधम कर्म किये तो कीटक योनि, ऐसे ही घूमता रहता है। यह तो जीवन की सार्थकता नहीं है। मानों एक भूलभुलैया का खेल हो जिसमें से हमें बाहर निकलना था पर हम उसी में अटक गए।

हम कभी किसी वस्तु में अटक जाते हैं या कभी किसी सम्बन्ध में और फिर उसमें फँस कर, अपने पुण्य -पाप, शुभ -अशुभ कर्मों के फल से जुड़कर बार-बार अलग योनियों में घूमते रहते हैं।

श्रीभगवान् इससे छूटने का उपाय बताते हैं - असङ्गशस्त्रेण - असङ्ग रुपी शस्त्र

शुकदेवजी महाराज का एक प्रसङ्ग है। शुकदेव महामुनि, श्रीवेदव्यास भगवान के पुत्र थे, जिन्होंने प्रथम बार भागवत जी की कथा राजा परीक्षित को सुनायी थी। वे माता के गर्भ से जन्म लेते ही तपस्या करने के लिए भाग गए। बाद में श्रीवेदव्यास जी ने भागवत सुनाकर उन्हें नियन्त्रित किया। एक बार उनके किसी प्रश्न के उत्तर के लिये श्रीवेदव्यास जी ने शुकदेव जी को राजा जनक के पास भेज दिया। सामान्यतः हम राजा जनक के नाम से माता सीता के पिताजी को ही स्मरण करते हैं परन्तु जनक एक पद है। भागवतजी में तिहत्तर जनकों की सूची दी गयी है। उसमें से उञ्चासवें जनक श्री सीरध्वज माता सीता के पिता थे। यह जनक जी माता सीता के पिता नहीं थे।

शुकदेव जी को यह अच्छा नहीं लगा कि मैं इतने बड़े संसार के इतने बड़े महात्मा का पुत्र हूँ, जिन्होंने अट्ठारह पुराण तथा चार वेदों की रचना की। उन महामुनि का पुत्र होने के पश्चात भी मैं किसी क्षत्रिय के पास ज्ञान लेने के लिए जाऊँ? फिर भी पिता की आज्ञा मानकर हिमालय से मिथिला नगर के द्वार पर आये। उनके मन में अहङ्कार के साथ-साथ इस बात की हीनता भी थी कि एक क्षत्रिय से ज्ञान लेने आया हूँ। वह अपना परिचय द्वारपाल को देते हुये बोले कि जाओ जाकर महाराज से कहो कि ब्रह्मलीन, तत्त्वविष्ठ, कृष्ण द्वैपायन, महामुनि वेदव्यास के परमप्रिय शिष्य ब्रह्मचारी, सर्वज्ञ, अत्यन्त ज्ञानी, वेदों के शास्त्री, तपस्वी, शास्त्रानुचारी, गुणातीत शुकदेव महामुनि उनके दर्शन के लिये पधारे हैं। द्वारपाल ने जाकर वैसी की वैसी सूचना राजा को दी। जनक जी की ऐसी आदत थी कि कोई भी साधु महात्मा आते थे तो जनक जी उनके स्वागत के लिये उठ कर दौड़ कर द्वार पर जाते थे, किन्तु उस समय राजा जनक ने कहा कि उनको प्रतीक्षा करने को कहो, मैं अभी व्यस्त हूँ। द्वारपाल ने बहुत सङ्कोच से आकर कहा तो शुकदेव जी को आघात लगा कि मेरे विषय में जानने के पश्चात भी राजा ने प्रतीक्षा करने को बोला। वह संयम के साथ प्रतीक्षा करते रहे।

अगले दिन दूसरा द्वारपाल आया और पूछा तो शुकदेव जी को लगा कि ऐसा न हो कि उपाधियाँ अधिक लम्बी हो रही हैं तो उन्होंने कहा कि महाराज को कहना कि महर्षि वेदव्यास के पुत्र, ब्रह्मलीन, तत्त्वविष्ठ, ज्ञानी महात्मा, मुनिश्रेष्ठ, गुणातीत, सर्वशास्त्रवेत्ता, तेजस्वी, सर्वज्ञ, तपस्वी शुकदेव महामुनि आये हैं। परिचय पहले से आधा कर दिया और द्वारपाल जनकजी के पास पहुँचा। जनकजी ने कहा कि उनको प्रतीक्षा करने को कहो, मैं अभी व्यस्त हूँ। द्वारपाल ने सूचना दी।

प्रतिदिन राजा प्रतीक्षा करने को बोलते और शुकदेव जी वहीं द्वार पर खड़े होकर प्रतीक्षा करते। हर दिन द्वारपाल बदल जाते और शुकदेव जी हर दिन परिचय आधा कर देते। ऐसे ही छह दिन बीत गये।

सातवें दिन शुकदेव जी ने द्वारपाल से कहा कि महाराज से जाकर कह दो कि जङ्गल से शुकदेव राजा जनक से दीक्षा लेने के लिये आया है।

जब समस्त उपाधियों का त्याग हुआ और केवल ज्ञानाकाङ्क्षी शिष्य रूप में उपस्थित हुये तब यह सुनते ही राजा ने कहा कि अरे!

उन्हें द्वार पर क्यों खड़ा रखा है? उन्हें भीतर लेकर आओ। अपने सिंहासन से उठकर महाराज जनक आधे मार्ग तक स्वयं भी पधारे। उन्हें पुष्प-प्रविष्टि करके महल के अन्दर लाये, पाद्य पूजा की, आसन पर बैठाया, अर्घ्य निवेदित किया। शुकदेव मुनि हैरान हो गये कि सात दिन बैठने को भी नहीं कहा और आज ऐसा स्वागत कर रहे हैं। राजा ने उन्हें भोजन के लिये आमन्त्रित किया और विश्राम करने के लिये कहा। कुछ समय बाद बुलाकर कहा कि आप बहुत शुभ घड़ी में पधारे हैं। आज हमारी वार्षिक देवी की पूजा है, जिसमें किसी ब्रह्मचारी ब्राह्मण के द्वारा तेल से भरा पात्र उठाकर पूरे राज्य की प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इसकी एक भी बूँद छलकनी नहीं चाहिये। आप यह शुभ कार्य करें।

शुकदेव जी ने बहुत सावधानीपूर्वक प्रदक्षिणा आरम्भ की। मिथिला नगर इतना बड़ा था कि पूरी परिक्रमा करने में छः घण्टे लग गये। प्रदक्षिणा करने के बाद जब वापिस आए तो वाद्यों के साथ उनका भव्य स्वागत हुआ। राजा जनक ने उनका पूजन किया, उस पात्र को अपने हाथ में लेकर देवी के समक्ष रखा, शुकदेव जी को दण्डवत प्रणाम किया और कहा, "महाराज! हम आप जैसे ब्रह्मचारी के दर्शन पाकर धन्य हो गये। फिर उन्होंने शुकदेव जी से पूछा कि आपको यह राज्य कैसा लगा? शुकदेव जी ने कहा कि "महाराज! मैंने कुछ भी नहीं देखा। मेरा ध्यान तो तेल के पात्र पर ही था कि कहीं एक बूँद भी तेल नहीं गिर जाए।" राजा जनक ने कहा कि आपकी ज्ञान की प्रथम शिक्षा पूर्ण हुई। शुकदेव जी ने आश्चर्य से उन्हें देखा तो उन्होंने कहा-

"जो जग में रहो तो ऐसे रहो, ज्यों जल में कमल का फूल रहे |"

इसका तात्पर्य यह है कि संसार में जो सारा ध्यान परमात्मा पर केन्द्रित करके उन्हीं का भजन सुमिरन करता है, वह श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय है। कमल का पुष्प जल में रहते हुये भी कभी जल का स्पर्श नहीं करता। यदि उस पर जल डाल भी दें तो वह जल उस पर से फिसल कर गिर जाता है। इसी प्रकार संसार मे रहना है तो संसार के भोगों से निर्लिप्त रहना है। इस प्रकार राजा जनक ने उन्हें सात दिनों में सात शिक्षाएँ दीं।

15.4

ततः(फ्) पदं(न्) तत्परिमार्गितव्यं(यँ) यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं(म्) पुरुषं(म्) प्रपद्ये यतः(फ्) प्रवृत्तिः(फ्) प्रसृता पुराणी॥15.4॥

उसके बाद उस परमपद (परमात्मा) की खोज करनी चाहिये जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिससे अनादिकाल से चली आने वाली (यह) सृष्टि विस्तार को प्राप्त हुई है, उस आदिपुरुष परमात्मा के ही मैं शरण हूँ।

विवेचन : श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! वैराग्य रूपी शस्त्र से काटकर उसके बाद उस परमपद परमेश्वर को भली-भाँति पूजना चाहिये। जिनको प्राप्त होने पर मनुष्य फिर लौटकर, इस संसार में वापस नहीं आते तथा जिस परमेश्वर से पुरातन संसार वृक्ष की यह सृष्टि विस्तार को प्राप्त हुई है, उस आदिनारायण पुरुष की शरण में जाने का दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वर का निध्यासन मनन करना चाहिये।" जो ज्ञानी इस प्रकार का निध्यासन मनन करता है, उसकी स्थिति श्रीभगवान् अगले श्लोक में बताते हैं।

15.5

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः(स्) सुखदुःखसञ्ज्ञैः(र्), गच्छन्त्यमूढाः(फ्) पदमव्ययं(न्) तत्।।5।।

जो मान और मोह से रहित हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है, जो नित्य-निरन्तर परमात्मा में ही लगे हुए हैं, जो (अपनी दृष्टि से) सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो गये हैं, जो सुख-दुःख नाम वाले द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं, (ऐसे) (ऊँची स्थिति वाले) मोह रहित साधक भक्त उस अविनाशी परमपद (परमात्मा) को प्राप्त होते हैं।

विवेचन : जो योगी अथवा जो महात्मा इस प्रकार अपने जीवन को बनाता है, श्रीभगवान् यहाँ उसके लक्षण बताते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं- "**जिस प्राणी का मान-सम्मान तथा मोह नष्ट हो जाए, जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है।"** यहाँ श्रीभगवान् के कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ प्रिय होने या कुछ प्रिय खाने में समस्या नहीं है, जैसे जलेबी खाने में समस्या नहीं है, किन्तु जलेबी खाने के दो घण्टे बाद भी, कई बार तो एक सप्ताह बाद भी जब जलेबी की बात होती है तो वह जलेबी याद आती है कि वहाँ जो जलेबी खायी थी, कितनी बढ़िया थी! कभी-कभी तो पाँच वर्ष बाद भी कहीं जलेबी खाते हैं तो फिर उस जलेबी की याद आ जाती है और हमारे मुँह में पानी आ जाता है, अर्थात् बहुत समय पहले खायी गयी जलेबी का स्वाद चिपका हुआ है, यह आसक्ति है। जलेबी खाने में समस्या नहीं है किन्तु जलेबी खाने के बाद उससे चिपक जाने में समस्या है।

हम किसी भी पदार्थ से, व्यक्ति से, वस्तु से जब चिपक जाते हैं, जैसे "मेरा घर, मेरे पति, मेरे बच्चे, मेरे मित्र। मैं इनके बिना नहीं रह सकता" और जो हमें प्रिय नहीं होता, हम उसके विषय में सोचते हैं कि इसे भगवानजी उठा क्यों नहीं लेते? जो हमें प्रिय रहता है, हम चाहते हैं कि वह सदैव हमारे निकट रहे और जो प्रिय नहीं है, वह तत्काल हमसे दूर हो जाये। यह आसक्ति है।

आगे श्रीभगवान् ऐसे व्यक्ति की तीसरी स्थिति के विषय में बताते हैं। अनेक बार हमारे साथ ऐसा होता है कि हमारा पूजा में बहुत मन लगता है, श्रीमद्भग्वद्गीता में तथा उसके विवेचन में बहुत मन लगता है और कभी-कभी बिल्कुल मन नहीं लगता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि **ऐसे व्यक्ति का मन हमेशा के लिए, अर्थात् नित्य-निरन्तर परमात्मा में ही लगा रहता है।**

चौथी स्थिति के विषय में श्रीभगवान् कहते हैं कि **वे सम्पूर्ण कामनाओं से निवृत्त हो जाते हैं।** अब उन्हें जलेबी मिली, खीर मिली या फिर सूखी रोटी मिली, वे तीनों स्थितियों में तृप्त हो जाते हैं। अपने मन का भोजन मिला या नहीं मिला, अपने मन के व्यक्ति मिले या नहीं मिले, अपने मन की परिस्थिति घटित हुयी या मन के विपरीत परिस्थिति घटित हुयी, वे सबमें सन्तुष्ट रहते हैं। उसकी कोई कामना नहीं रह जाती है।

पाँचवीं स्थिति के विषय में श्रीभगवान् कहते हैं कि **वे सुख-दुःख नाम वाले द्वन्द्वों से मुक्त हो जाते हैं।** ऐसे उच्चकोटि वाले, मोह रहित साधक एवम् ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

15.6

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम।।6।।

उस (परमपद) को न सूर्य, न चन्द्र (और) न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है (और) (जिसको) प्राप्त होकर जीव लौट कर (संसार में) नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

विवेचन: अब श्रीभगवान् कहते हैं कि "हे अर्जुन! इस परमपद को प्राप्त करने वाले मनुष्य इस संसार में वापस लौटकर नहीं आते। यदि मनुष्य स्वर्गलोक, नर्कलोक, ब्रह्मलोक या पितृलोक में जाता है या मनुष्यलोक में रहता है, तब भी उसे वापस आना पड़ता है, अर्थात् समस्त चौदह लोकों में जाकर वापस आना पड़ता है, किन्तु जो मुझे परमधाम में प्राप्त हो जाता है, उसे पुनः वापस नहीं आना पड़ता। अब श्रीभगवान् विस्तार से परमधाम के विषय में बताते हैं कि **"यह वह स्थान है, जिसे न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न ही अग्नि प्रकाशित कर सकती है। वह स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला मेरा परमधाम है।"**

आज के विवेचन सत्र का समापन श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन के साथ हुआ।

हरि शरणम्, हरि शरणम्, हरि शरणम्, हरि शरणम्,

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- प्रभा दीदी

प्रश्न- महाभारत की कथा में प्रसङ्ग आता है कि द्रौपदी स्वयंवर में अर्जुन ब्राह्मण वेश में उपस्थित हुये हैं। श्रीकृष्ण उनके उठने से ही उन्हें पहचान जाते हैं और बलराम से कहते हैं कि दादा यही अर्जुन हैं। मेरा प्रश्न है कि जब वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति अपना परिचय दे रहे थे तो अर्जुन ने भी तो अपना परिचय दिया होगा, या फिर ब्राह्मणों को यह स्वतन्त्रता मिलती थी कि उन्हें अपना परिचय नहीं देना पड़ता था?

उत्तर- अर्जुन ने अपना परिचय दिया था, लेकिन थोड़ा घुमा-फिरा कर दिया था और ब्राह्मण पुत्र के रूप में ही अपना परिचय दिया था। अर्जुन को कोई जानता नहीं था और चूंकि स्वयंवर में कोई भी आ सकता था, इस कारण अर्जुन वहाँ बीच में उठकर आ गये और अपना संक्षिप्त परिचय देकर लक्ष्य को भेदा। अर्जुन का दैवीय स्वरूप देखकर राजा द्रुपद भी मोहित हो गये, द्रौपदी भी मोहित हो गयीं तो किसी ने उन्हें रोका भी नहीं और उनका विस्तृत परिचय भी नहीं पूछा।

प्रश्नकर्ता- अनन्या दीदी

प्रश्न- बारहवें अध्याय में बताया गया है कि आप जो भी कार्य कर रहे हैं, उसे कर के भूल जाइए या ऐसे नहीं सोचिए कि यह मैंने किया है, किन्तु मैंने अभी नौकरी करनी आरम्भ की है तो वहाँ यह कहा जाता है कि आपने जो भी कार्य किया है, उसे दिखाना चाहिये, आप उसका विवरण लिख कर रखिए और सबको बताईए। मुझे क्या करना चाहिये?

उत्तर- आपका प्रश्न बहुत उत्तम है। इन सारी बातों में क्रिया का महत्त्व नहीं है बल्कि भाव का महत्त्व है इसलिए हमारी भावना यह है कि यह सब मैंने नहीं किया बल्कि ईश्वर ने हमसे करवा लिया। ईश्वर ने यह सब इस शरीर से करवाया, तो परिचय इस शरीर का जाना जाता है। इस शरीर ने यह कार्य किया, ऐसा मानकर हम वहाँ उनको बता देंगे किन्तु अन्दर से हमारी भावना यही होगी कि यह कार्य करने की चेष्टा मेरी नहीं है, यह तो ईश्वर ने मुझसे करवा लिया। हमारी भावना शरणागति की होगी और कार्यस्थल पर जिसे जो विवरण चाहिये, वह बता देंगे।

प्रश्नकर्ता- अनन्या दीदी

प्रश्न- गीताजी में जो कुछ कहा गया है, वह केवल श्रीकृष्ण के लिये है या किसी भी भगवान के लिये हो सकता है?

उत्तर- पूरी महाभारत में एक लाख श्लोक हैं और एक लाख श्लोक अट्ठारह पर्वों में हैं। इनमें जहाँ-जहाँ भी भगवान श्रीकृष्ण बोले, वेदव्यास जी ने लिखा है **"वासुदेव उवाच, कृष्ण उवाच, केशव उवाच"** किन्तु पच्चीसवें अध्याय से बयालीसवें अध्याय, अर्थात् केवल अट्ठारह अध्यायों में वेदव्यास जी ने **"श्रीभगवानुवाच"** लिखा है। **इसका कारण है कि यहाँ बोले तो श्रीकृष्ण ही हैं किन्तु वे भगवतस्वरूप परमात्मा के रूप में बोले हैं** इसलिए जिसके इष्ट श्रीराम हैं, उसके लिये यह श्रीराम उवाच है, जिसके इष्ट शिवजी हैं, उसके लिये वह "श्रीशिव उवाच है। जिसके जो इष्ट हैं, उसके लिये वह उनके इष्ट का ही उवाच है। हमें इसी भाव से श्रीमद्भगवद्गीता सुननी चाहिये कि यह सब मेरे इष्ट बोल रहे हैं।

प्रश्नकर्ता- साधना दीदी

प्रश्न- आपने बताया था कि हम राजा जनक के पिता की बात नहीं कर रहे हैं जो माता सीता के पिताजी थे। भागवतजी में तिहत्तर जनकों की सूची दी गयी है किन्तु फिर आपने बताया कि वह मिथिला नगर गये थे?

उत्तर- यह मिथिला की परम्परा थी। मिथिला नगर की तिहत्तर पीढ़ियों में जो भी राजा बनता था, वह जनक ही कहलाता था। सीताजी के पिता का नाम श्री सीरध्वज था।

प्रश्नकर्ता- मोनिता दीदी

प्रश्न- मेरा प्रश्न है कि श्रीवेदव्यास जी, जिन्होंने महाभारत की रचना की है, वह श्रीराम के युग में थे या महाभारत युग में थे? अलग-अलग युग में एक ही मुनि हैं?

उत्तर- श्रीवेदव्यास एक ही हैं। वह श्रीराम के काल में नहीं थे। सीताजी के पिता उञ्चासवें जनक थे और जो कथा बतायी गयी है, वह राजा जनक काफी बाद के थे।

प्रश्नकर्ता- गरिमा दीदी

प्रश्न- जैसे गीताजी को पढ़ने और समझने के साथ जीवन में उतारना और अपनाना बहुत आवश्यक है। गीताजी में कहा गया है कि हमें किसी के प्रति द्वेष नहीं रखना चाहिये, किन्तु कुछ व्यक्ति पशुओं के साथ क्रूरता तथा अमानवीय व्यवहार करते हैं तो उनके प्रति मेरे मन में द्वेष आता ही है और मैं बहुत व्यथित हो जाती हूँ। इससे कैसे बाहर निकलूँ?

उत्तर- मूल सिद्धान्त है कि **"पाप से घृणा करो पापी से नहीं"** जो बुरे कर्म करते हैं, उनके बुरे कर्म से घृणा करनी चाहिये। कोई भी पूरी तरह बुरा नहीं होता। हमसे भी अनेक बुरे कर्म होते होंगे, तो क्या सब हमसे घृणा करते हैं? सभी प्राणी ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं।

भगवान श्रीराम ने जब अङ्गद को दूत बना कर लङ्का भेजा तो उन्होंने पूछा कि प्रभु मैं वहाँ बात क्या करूँगा? तो भगवान् श्रीराम ने कहा कि तुम जाकर कहना-

"काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥"

अपना काम हो जाये और उसका हित हो जाये। मेरी पत्नी का अपहरण जिसने किया, उसके हित का विचार करने वाले भगवान् श्रीराम हैं। भगवान् श्रीराम को तो रावण से घृणा करनी चाहिये, किन्तु वे घृणा नहीं करते बल्कि कहते हैं कि मेरा काम हो जाये और उसका हित हो जाये। वे इसलिए मर्यादा पुरुषोत्तम हैं क्योंकि वे अपने शत्रु के भी कल्याण का चिन्तन करते हैं। हमारे मन में द्वेष आता है, यह स्वाभाविक है किन्तु हमें व्यक्ति से द्वेष नहीं करना चाहिये।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीएॅफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||